17.12.1990, 'हिन्दुस्तान' (पटना)

अंतरराष्ट्रीय

बंगलादेश में दूसरी क्रांति : जनतंत्र की लहर या...

जब लातीनी अमरीका के तमाम तानाशाही एक-एक करके धराशायी हो रहे थे और पूर्वी जर्मनी को भी आखिरकार आमूलचूल परिवर्तन करने को मजबूर होना पड़ा, उस समय बंगलादेश के सैनिक राष्ट्रपति जनरल हुसैन मुहम्मद इरशाद का तानाशाही शिकंजा और भी कसता जा रहा था। शायद उन्हें इस बात का गुमां नहीं था कि वो लहर रूमानिया, बुल्गारिया, पोलैंड या चेकोस्लोवाकिया से एशिया में आने की जरूरत नहीं है बल्कि एशिया से ही उन तमाम तथाकथित समाजवादी देशों में गयी है जिन्होंने समाजवाद के नाम पर एकछत्र निरंकुशता कायम करके लूट-खसोट मचा रखी थी।

और नहीं कुछ तो अपने पूर्व परिवार पाकिस्तान से ही सबक ले लेते, जहां जिस सेना को जिया-उल-हक ने ११ साल तक मनमानी करने की छूट दी, उसी को अपने क्रूर राष्ट्रपति को षड्यंत्र करके मरवाने और श्रीमती बेनजीर भुट्टो को लाने का श्रेय है।

कोई भी सैनिक शासक जनता की जनतंत्र की चाहत पूरी नहीं कर सकता, क्योंकि वो हर समस्या का हल बुलेट में खोजता है जो किसी भी मसले का अस्थायी हल है और वही दमन तथा उत्पीड़न का दूसरा नाम है। व्यवस्था में परिवर्तन के लिए होने वाले बलवे और प्रदर्शनों को भले ही विकास के मार्ग का रोड़ा समझकर ही क्यों न दबाया जाये, अगर जनता को वाकई यह इत्मीनान हो जाये कि जनतांत्रिक भावनाओं का दमन किया जा रहा है तो इसका एकमात्र मतलब यही होता है कि सत्ता से चिपके रहने के लिए ही सारे साम दाम दंड भेद अपनाये जा रहे हैं। और उसके बाद सेना से आया हुआ शासक जनता का विश्वास कतई नहीं जीत सकता। हथियार हाथ में होने की वजह से थोड़ा झुकना या उदार होना उसे अपनी शान के खिलाफ लगता है और राजनीतिक पैंतरेबाजी उसके वश की चीज नहीं होती, अगर पहल की जाती है तो उससे भी दमन की बू निकलती है। फिर एक सैनिक जनरल को मारकर या अपदस्थ कर दूसरे द्वारा सत्ता हथिया लेने का सिलसिला शीघ्र खत्म नहीं हो पाता।

राष्ट्रपति इरशाद ने कुछ इसी से मिलते-जुलते फलसफे का नमूना पेश किया है। जनता की प्रबल मांग के आगे घुटने तो उन्होंने टेके जरूर, लेकिन इतनी देर करके कि जनता के लिए उनकी बात सुनना तो दूर, अब लोग उन्हें कटघरे में देखने को बेताब हैं। और उनके वही सैनिक सहयोगी अब अपने पूर्व राष्ट्रपति पर तस्करी, लूट और विदेशी बैंकों में नाजायज तरीके से पैसा जमा करने के कारण मुकदमा चला रहे हैं जिनके सहारे जनरल इरशाद ने आठ साल तक राज किया। राष्ट्रपति को हटाने में तीनों सेनाध्यक्षों ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

आज से छह महीना पहले श्री इरशाद ने अगर अपने पद से इस्तीफा देकर बिल्कुल स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव करा दिया होता तो बहुत संभव था कि उन्हें ही राष्ट्रपति चुन लिया जाता, क्योंकि पिछले आम चुनाव में उनकी जातीय पार्टी द्वारा वोट हथियाने के लिए बड़े पैमाने पर की गयी धांधली की बात किसी से छुपी नहीं है और उसी समय से देश की तमाम विपक्षी पार्टियां मौजूदा संसद को भंग करके नये चुनाव की मांग कर रही थीं। विपक्षी पार्टियों ने उस चुनाव का बहिष्कार भी किया था। इन आठ वर्षों में जनरल इरशाद ने अपने खिलाफ उठने वाली आवाजों को दबाने के लिए एक भी हथकंडा नहीं छोड़ा और ज्यादा नहीं, मात्र आठ सप्ताह पहले अगर वे सचेत हो गये होते तो सिर्फ आठ दिनों के अन्दर वो वक्त नहीं देखना पड़ता जिसकी उन्होंने कल्पना नहीं की होगी। राष्ट्रपति हुसैन मुहम्मद इरशाद ने अपने पद से इस्तीफा तब दिया (७ दिसम्बर) जब उन्हें पक्का महसूस हो गया कि जनता उन्हें अपमान की सजा दिये बिना नहीं छोड़ेगी और उसके पहले कि वे देश से भागने में कामयाब हों, पूरे परिवार के साथ उन्हें नजरबन्द कर दिया गया। शायद श्री इरशाद का भी वही हश्र हो जो रूमानिया के कम्युनिस्ट तानाशाह चेसेस्कू और पूर्व जर्मनी के पूर्व चांसलर एरिक होनेकर का हुआ। चेसेस्कू के भाग्य का फैसला तो एक दिन में हो गया था। सैनिकों ने उन्हें भागते हुए पकड़ लिया और उनमें इस बात की होड़ लग गयी थी कि चेसेस्कू के सीने में पहली गोली कौन दागेगा। एरिक होनेकर को भी जेल में पड़े-पड़े मरना होगा।

इस तरह का परिवर्तन बंगलादेश के इतिहास की पहली घटना है। १९७१ (जब जगबंधु स्व. शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई जीतकर बंगलादेश स्वतंत्र देश बना) से अब तक जितने भी शासक हुए हैं, सबके सब किसी न किसी को मारकर या जबर्दस्ती तख्तापलट करके सत्ता में आये हैं। शेख मुजीबुर्रहमान का परिवार समेत कत्लेआम के बाद बंगलादेश में एक भी असैनिक राष्ट्रपति नहीं हुआ। इतना ही नहीं, जनता की मांग पर पहली बार सत्ता परिवर्तन हुआ है। शेख मुजीब की हत्या के बाद आने वाले हर शासक को उनके अनुवर्ती ने जनता तक पहुंचने से पहले ही कहीं और पहुंचा दिया। इसलिए १९७१ की मुक्ति क्रांति के बाद इसे दूसरी क्रांति की संज्ञा दी जा सकती है। वर्तमान सेनाध्यक्ष जनरल नूरुद्दीन भी अगर चाहते तो बड़ी आसानी से इरशाद को अपदस्थ करके अपनी परम्परा की अगली कड़ी बन सकते थे, लेकिन उन्होंने समय की नब्ज पहचानी और जनता की सद्भावना प्राप्त करना ज्यादा श्रेयस्कर समझा जिसमें जनरल इरशाद चूक गये। इसलिए आज जनरल नूरुद्दीन की इस बात पर अविश्वास नहीं किया जा सकता कि उन्होंने राष्ट्रपति को काफी पहले सत्ता से हटकर स्वतंत्र चुनाव कराने का रास्ता साफ करने का सुझाव दिया था।

२७ नवम्बर को जब श्री इरशाद ने राष्ट्रीय आपातकाल घोषित करके मार्शल लॉ लागू किया और सारे विपक्षी नेताओं को नजरबंद कर दिया, उस समय जनरल नूरूद्दीन खाड़ी में इराक के खिलाफ तैनात संयुक्त राष्ट्र की बहुद्देशीय शांति सेना में शामिल बंगलादेश की टुकड़ी का जायजा होने गये थे। उनके लौटकर आने के बाद तो सारा खेल खत्म हो चुका था। जिस समय विपक्षी नेता अल्टीमेटम दे चुके थे कि राष्ट्रपति के इस्तीफे के बाद ही कोई नयी व्यवस्था करने के संबंध में बातचीत हो सकती है, तब भी जनरल इरशाद की जनता को झांसा देने की वह असफल कोशिश जारी थी कि वे भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर और कुछ ब्रिटिश सांसदों को आमंत्रित कर उनकी देख-रेख में चुनाव कराने को तैयार हैं। विपक्षी नेताओं को उन्होंने एक उप-राष्ट्रपति नामजद को भी कहा। कहा बताते हैं कि जनरल नूरुद्दीन ने इस प्रस्ताव के प्रति असहमति व्यक्त की और नौसेना तथा वायुसेना के अध्यक्ष भी उनसे सहमत थे। पता चला है कि छात्रों और नौजवानों पर सेना तथा पुलिस ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया था। कई जनरलों ने बाहर से भाड़े पर लाये गये सशस्त्र गिरोहों द्वारा विश्वविद्यालय परिसरों में घुसकर छात्रों के साथ अमानवीय व्यवहार किये जाने के खिलाफ भी बगावत कर दी ऐसा करके १९८७ में श्री इरशाद ने विद्रोह पर काबू पाने में सफलता हासिल की थी। इस बार छात्रों के भी हौसले बुलंद थे, क्योंकि भाड़े के सैनिकों छात्रावासों में भेजे जाने के विरोध में तमाम विश्वविद्यालयों के कुलपतियों और अध्यापकों ने इस्तीफे दे दिये, सरकारी कर्मचारियों ने काम पर आना बंद कर दिया। प्रेस सेंसरशिप की वजह से पत्रकारों ने सिर्फ सरसरी समाचारों वाले अखबार में रिपोर्ट देने से इन्कार कर दिया। इन सब का मिला-जुला परिणाम जनरल इरशाद के प्रतिकूल साबित हुआ और जब उन्हें पक्का यकीन हो गया कि सेना उनके इशारे पर आन्दोलनकारियों पर गोली नहीं चलायेगी ठीक तभी वे इस्तीफा देने को तैयार हुए।

जनतंत्र की इस जीत का सारा श्रेय शेख मुजीब की पुत्र शेख हसीना जावेद और बेगम खालिदा जिया (जिनके पति को अपदस्थ कर जनरल इरशाद १९८२ में सत्ता में आये) को जाता है। बंगलादेश की पैंतीस विपक्षी पार्टियां तीन गठबंधनों में बंटी हैं जिनमें सबसे बड़े गठबंधन अवामी लीग की अध्यक्षा शेख हसीना हैं और सात पार्टियों को मिलाकर बनी बंगलादेश राष्ट्रीय पार्टी की नेतृत्वकर्ता बेगम खालिदा हैं। जनरल इरशाद की जातीय पार्टी के भी काफी लोग चुपके-चुपके समय रहते अन्य विपक्षी पार्टियों के साथ हो गये, क्योंकि इरशाद का भविष्य तो अब अंधकारमय है।

बंगलादेश के मुख्य न्यायाधीश शहाबुद्दीन अहमद ने कार्यवाहक राष्ट्रपति का पद संभाला है और १० दिनों के अन्दर चुनाव कराने का वायदा किया है। लेकिन उस देश में जैसी परम्परा की नींव पड़ चुकी है उसे देखते हुए कुछ निश्चित अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि अभी भी सेना के इशारे पर ही सारे फैसले लिये जा रहे हैं। इरशाद के खिलाफ खुद्दर निकालना जायज था, इसलिए उन्हें देश छोड़ने से पहले पत्नी-बच्चे समेत नजरबंद कर दिया गया। गत सप्ताह श्री इरशाद ने वक्तव्य दिया था कि 'यह मेरा देश है, मैं यहां से भागकर किसी और देश की शरण क्यों लूं।' जनता उनकी इस भावना की कद्र करती अगर इरशाद ने ४,००० विरोधियों को गोलियों से भूनने से पहले जनभावनाओं का आदर किया होता।

अपने पड़ोस में हो रहे परिवर्तनों पर भारत की नजर है। अगर वास्तव में जनतांत्रिक तरीके से चुनाकर सरकार बनती है तो भारत को गंगाजल बंटवारे से लेकर चकमा आदिवासियों सरीखी कई समस्याओं के हल में आसानी होगी। क्योंकि उधर नेपाल में भी चुनाव की तैयारी शुरू हो गयी है, जिससे भविष्य में संबंध और अच्छे होने की संभावना है। लेकिन बंगलादेश से संबंध के बारे में तो वक्त ही बतायेगा।

शशिधर खां

